जोबनेर कृषि

जून, 2023 वर्ष : 8 अंक : 6 प्रति अंक मूल्य 25 रुपये वार्षिक शुल्क : 250 रुपये

प्रसार शिक्षा निदेशालय

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय

जोबनेर, जिला–जयपुर (राज.) 303 329

राजस्थान में मूँगफली के उपयुक्त उन्नत किस्में व बीजोत्पादन के निर्धारित मानक

डॉ. जोगेन्द्र सिंह

सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्विविद्यालय, जोबनेर

परिचय :

मूँगफली (ऐराकिस हायपोजिया) एक प्रमुख तिलहन फसल है। इसकी जड़ों में पाये जाने वाले राइजोबियम जीवाणु वायुमण्डल से नत्रजन का स्थिरीकरण कर पौधे को पोषण देते है। विश्व में चीन के बाद भारत मूँगफली का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। भारत में मुख्यतः गुजरात, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, तेलंगाना तथा महाराष्ट्र राज्यों में मूँगफली की खेती की जाती है, इन 8 राज्यों का मूँगफली के कुल क्षेत्रफल व उत्पादन में लगभग 90 प्रतिशत से भी अधिक का योगदान है। राजस्थान में मूँगफली 7.39 लाख हैक्टेयर में बोई जाती है और प्रतिवर्ष लगभग 16.19 लाख टन मूँगफली का उत्पादन होता है। राजस्थान में मुख्य रूप से बीकानेर, जोधपुर, चुरू, जैसलमेर, जयपुर, सीकर, चितौड़गढ़ और जालौर में इसकी खेती की जाती है।

महत्व : मूँगफली में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में होता है इसलिए इसे भारत में गरीबों का बादाम भी कहा जाता है। यह देश में वनस्पति तेल की कमी को पूरा करने में एक अहम भूमिका निभाता है। मूँगफली के दानों में 48–50 प्रतिशत तेल तथा 28–30 प्रतिशत प्रोटीन होता है। इसके अलावा इसमें खनिज पदार्थ (जैसे– पोटेशियम, सोडियम, कैल्शियम, मैग्नीज, जिंक तथा आयरन) तथा विटामिन्स (के, ई तथा बी–6) भी भरपूर मात्रा में उपलब्ध होते है।

राजस्थान हेतु उपयुक्त उन्नत किस्में

मूँगफली मे तीन प्रजातियां पायी जाती है जैसे– विस्तारी, अर्धविस्तारी तथा झुमका किस्मे, जो कि भूमि के अनुसार बोने के काम में ली जाती है। इसकी विभिन्न उन्नत किस्में एवं विशेषताऐं सारणीबद्ध निम्न प्रकार है:–

क्र. सं.	किस्म	अधिसूचना का वर्ष	पकाव अवधि	उपज प्रति हैक्टेयर	विशेष गुण
1.	एच.एन.जी–10	1996	135–140 दिन	16–20 क्वि.	–
2.	टी.जी. 37–ए	2004	100–110 दिन	18–20 क्वि.	जल्दी पकने तथा कम सुषुप्तावस्था वाली।
3.	आर.जी. 382 (दुर्गा)	2005	128–133 दिन	22–25 क्वि.	–
4.	प्रताप मूँगफली–1	2005	98–105 दिन	25–30 क्वि.	कॉलर रोट, तना गनल व बड नेक्रोसिस रोग के सामान्य प्रतिरोधी।
5.	प्रताप मूँगफली–2	2005	95–100 दिन	18–28 क्वि.	जल्दी पकने वाली तथा पत्ती धब्बा व बड नेक्रोसिस रोग के मध्यम प्रतिरोधी
6.	टी.बी.जी. 39	2007	115–120 दिन	32 क्वि.	–
7.	गिरनार–2	2008	125–130 दिन	25–30 क्वि.	–
8.	मल्लिका	2009	125–130 दिन	24–28 क्वि.	निर्यात हेतु एवं सींगदाना बनाने हेतु उपयुक्त
9.	एच.एन.जी.–69	2010	120–125 दिन	24–28 क्वि.	–
10.	आर.जी. 425 (राज दुर्गा)	2011	125–130 दिन	15–18 क्वि. (असिंचित) 32–36 क्वि. (सिंचित)	चितकबरे–मटमेले रंग की गुली तथा कॉलर रोग प्रतिरोधी
11.	एच.एन.जी–123	2012	124–126 दिन	24–28 क्वि.	पीला पन रोग के प्रति सहनशील
12.	आर.जी. 510 (राज मूँगफली–1)	2012	126–130 दिन	26–32 क्वि.	कॉलर रोट, तना गलन, टिक्का, विषाणु गुच्छा रोग प्रतिरोधी
13.	आर.जी. 559–3 (राज मूँगफली–3)	2016	125–128 दिन	28–34 क्वि.	निर्यात हेतु उपयुक्त
14.	आर.जी. 559–3	2023	122 दिन	35–40 क्वि.	बीज व दानों का अनुपात अत्यधिक (75 प्रतिशत)

मूँगफली के बीजोत्पादन हेतु निर्धारित मानक:-

खेत का चयन

मूँगफली के बीज उत्पादन हेतु ऐसे खेत का चयन करें जिसमें पिछले दो वर्षों से मूँगफली की फसल न बोई गई हो (उसी किस्म का उसी वर्ग या उससे उच्च वर्ग का बीजोत्पादन लिया गया हो, के अलावा) अन्यथा गत वर्ष के पड़े हुए बीज स्वतः उग जाते हैं जिससे बीज की आनुवंशिक गुणवता खराब हो जाती है।

पृथक्करण दूरी

आधार व प्रमाणित बीज उत्पादन हेतु चुने हुए खेत के चारों तरफ 3 मीटर की दूरी पर मूँगफली की फसल (उसी किस्म के अलावा) नहीं बोई गई हों व बोई नहीं जानी चाहिए।

प्रमाणित बीज कहाँ से खरीदें

कृषि विभाग द्वारा राष्ट्रीय बीज निगम, राज्य बीज निगम सहित विभिन्न सहकारी संस्थाओं द्वारा उत्पादित विभिन्न फसलों के नवीन किस्मों के प्रमाणित बीजों को सहकारी समितियों/संस्थाओं के माध्यम से उचित मूल्य पर किसानों को उपलब्ध करवाया जाता है। इसके अलावा कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि अनुसंधान केन्द्रों, कृषि विज्ञान केन्द्रों आदि पर भी उचित मूल्य पर विश्वसनीय बीज मिलता है।

फसल निरीक्षण

पुष्पावस्था एवं फसल पकने के समय कम से कम दो बार फसल निरीक्षण अतिआवश्यक हैं। फसल निरीक्षण के समय बीज फसल में अवांछित पौधे नहीं होने चाहिए। अवांछित पौधे, निर्धारित मानक से अधिक हो तो बीज निरस्त कर दिया जाता है।

बीजोत्पादन हेतु प्रक्षेत्र मानक

कारक	आधार बीज	प्रमाणित बीज
पृथक्करण दूरी (न्यूनतम)	3 मीटर	3 मीटर
अवांछित पौधे (अधिकतम)	0.10 प्रतिशत	0.20 प्रतिशत
बीजोत्पादन हेतु बीज मानक		
कारक	आधार बीज	प्रमाणित बीज
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	96 प्रतिशत	96 प्रतिशत
निष्क्रिय बीज (अधिकतम)	4 प्रतिशत	4 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	कोई नहीं	कोई नहीं
खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	कोई नहीं	कोई नहीं
अंकुरण (न्यूनतम)	70 प्रतिशत	70 प्रतिशत
नमी की मात्रा (अधिकतम)	9 प्रतिशत	9 प्रतिशत

जैविक खेती के लिए उपयोगी मित्र कवक: ट्राईकोडर्मा

ममता देवी चौधरी1, अर्जुन सिंह जाट2, सुमन चौधरी3 एवं सुमित्रा देवी बम्बोरिया4

1,4 विषय वस्तु विशेषज्ञ, 2वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र मोलासर (नागौर) कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

3सहायक आचार्य कीट विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

ट्राईकोडर्मा एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं कृषि की दृष्टि से उपयोगी जैव कवकनाशी है। कृषि योग्य भूमि में अच्छी फसल उत्पादन के लिए किसान मिट्टी में पैदा होने वाले हानिकारक शत्रु फफूंदों से फसलों की ट्राईकोडर्मा मित्र फफूंद से सुरक्षा कर सकते हैं। दलहनी, तिलहनी, सब्जियां सहित कपास व जीरे आदि की फासलों में सर्वाधिक नुकसान मृदा जनित कवकों से उत्पन्न रोगों से होता है। इन बीमारियों की रोकथाम के लिए पौध संरक्षण रसायनों से बीज उपचार किया जाता है। इनके अंधाधुंध उपयोग से पर्यावरण, मनुष्यों सहित जीव जन्तुओं पर हानिकारक प्रभाव होने की समस्या पैदा हो रही है। रासायनिक कवक नाशियों के उपयोग के दुष्प्रभाव को देखते हुए फसलों में लगने वाले भूमि जनित फफूंद रोगों की रोकथाम के लिए जैविक दवा ट्राईकोडर्मा नामक मित्र फफूंद विकसित की गई है। यह मृदा जनित फफूंद से पैदा होने वाले रोगों के जैविक नियंत्रण में प्रभावकारी है।

जानिए क्या है ट्राईकोडर्मा

ट्राईकोडर्मा एक फफूंद हे, जो सामान्यतः मृदा में पायी जाती है। इसकी कई प्रजातियां है, परन्तु उनमें ट्राईकोडर्मा विरडी, ट्राईकोडर्मा हारजएिनम, ट्राईकोडर्मा वाइरेन्स अधिक उपयोगी प्रजातियां हैं। यह फफूंद हरे रंग की होती है। ट्राईकोडर्मा बीजाणुओं के रूप में कोनिडिया तथा क्लेमाइडोस्पोर उत्पन्न करता है। इनमें से क्लेमाइडोस्पोर विपरीत वातावरण में लम्बे समय तक जमीन पड़े रहते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर यह क्लेमोइडोस्पोर फफूंद तंतु बनाकर वृद्धि करते हैं। अधिक संख्या में कोनेछिया (बीजाणु) बनाते हैं। ट्राईकोडर्मा को यीस्ट या मोलेसेस माध्यम से उगाकर इसका कल्चर तैयार किया जाता है। इस कल्चर को कैल्शियम या चाक पाउडर में 1:2 के अनुपात में मिलाकर वैटेबल पाउडर के रूप में उन्नत कल्चर तैयार किया जाता है।

ट्राईकोडर्मा की कार्य विधि

ट्राईकोडर्मा व रोग जनकों जैसे फ्रयूजेरियम, पिथियम, राइजक्टोनिया आदि में स्थान व पोषण के लिए स्पर्धा प्रतियोगिता होती है। जिससे रोगजनकों की वृद्धि व विकास अवरूद्ध हो जाता है। ट्राईकोडर्मा के फफूंद तंतु (एप्रिसोरिया), रोगजनकों के फफूंद तंतुओं सम्पर्क में आते ही उन्हें जकड़ लेते हैं। इसके फलस्वरूप रोगजनकों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। इसके उपरान्त ट्राईकोडर्मा अपने चूषकों (हास्टोरिया) को रोगजनकों के फफूंद तंतुओं में प्रवेश करवाकर उन पर अपनी वृद्धि करने लगता है। इतना ही नहीं साथ ही साथ रोगजनकों के अन्दर कई प्रकार के एंजाइम जैसे काइटिनेज, बीटा1, 3–ग्लकाइनेज, प्रोटिएज आदि छोड़ देता है। रोगजनक की कोशिका भित्ति नष्ट हो जाती है व रोगजनक मर जाता है। ट्राईकोडर्मा विभिन्न प्रकार के प्रति जीवी एवं अन्य पदार्थ जैसे ग्लियोविरिडिन, ग्लियोटाक्सिन, अल्काइल पाइरोल्स आदि भीउत्पन्न करता है। जो रोगजनकों की वृद्धि पर विपरीत असर डालते हैं। ट्राईकोडर्मा द्वारा काइटिनेज पर ऑक्साइड जैसे पदार्थ उत्पन्न होते है। जिस कारण पौधों में रोग क प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

ट्राईकोडर्मा की मृदा में उपस्थिति अघुलनशील रॉक फॉस्फेट को घुलनशील बनाती है। इसके साथ ही वह जिंक, मैग्नीशियम, लौहा जैसे सक्षम तत्वों की सक्रियता को बढ़ाती है। इस प्रकार पौधे को सकल पोषक पदार्थ उपलब्ध होते है। फलस्वरूप पौधें की वृद्धि और विकास अच्छा होता है। इसके अलावा उनमें रोगजनकों के प्रति लड़ने की क्षमता में वृद्धि होती है।

ट्राईकोडर्मा की प्रयोग विधि

बीज उपचार : बीज उपचार के लिए 6–10 ग्राम ट्राईकोडर्मा की मात्रा का प्रति किग्रा बीज की दर से प्रयोग करते हैं, लेकिन ध्यान यह देते हैं कि यह पाउडर सभी बीजों में समान रूप से चिपक जाये। यदि बीज की मात्रा अधिक है तो सीड ट्रीटिग ड्रम में और यदि बीज मात्रा कम है तो किसी डिब्बे या पीपे में बीज को ले लें। इसके बाद इसमें निर्धारित मात्रा में ट्राईकोडर्मा पाउडर मिलाकर अच्छी तरह हिलायें। यदि आवश्यक हो तो बीज पर 5–10 मि.ली. लीटर पानी का छींटा दे फिर उसे 2–3 घंटे तक छाया में सुखाने के बाद बुवाई करें।

पौधे/पौधे के अन्य वानस्पतिक भागों का उपचार : इसका उपचार फसलों, जिनमें पौध रोपण किया जाता है, जैसे टमाटर, बैंगन, मिर्च और प्याज आदि या बीज के रूप में पौधे के वानस्पतिक भाग का उपयोग जैसे गन्ना, आलू, अदरक आदि में किया जाता है। इस विधि में ट्राईकोडर्मा की 10 ग्राम मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोल लें। फिर इसमें रोपण के लिए तैयार पौधों की जड़ों को या पौधों के वानस्पतिक भागों को जैसे कंद, प्रकंद, बल्ब आदि को 10–15 मिनिट तक डुबाने के बाद रोपण वाली फसलों का तुरन्त रोपित करें। वानस्पतिक भागों को थोड़ी देर छाया में सुखाने के बाद ही खेत में बुवाई करें। पौध उपचार के लिए 10 ग्राम ट्राईकोडर्मा पाउडर को एक लीटर पानी में मिलाकर इस घोल से पौधे की जड़ों को नम करें।

नर्सरी उपचार : इस विधि का उपयोग मुख्यत : सब्जी वाली फसलों के लिए किया जाता है। जिनकी पहले हम नर्सरी तैयार करते हैं। फिर इनका रोपण खेत में करते हैं। पौधशाला उपचार के लिए 250 ग्राम ट्राईकोडर्मा पाउडर को 50 लीटर पानी में घोलें व इस घोल से 400 वर्ग मीटर क्षेत्र की पौधशाला की क्यारी को झारा या फव्वारा के माध्यम से तर कर दें या 250 ग्राम ट्राईकोडर्मा पाउडर को 2–2.5 किग्रा सड़ी हुई

गोबर की खाद में मिलाकर 400 वर्गमीटर क्षेत्र की पौधशाला (क्यारी) में छिड़कर इसकी हल्की गुड़ाई कर मिट्टी में मिला दें।

मृदा उपचार : मृदा उपचार के लिए 2.0–2.5 किग्रा. ट्राईकोडर्मा पाउडर को 75–80 किग्रा. पकी हुई गोबर की खाद में मिलाकर 10–15 दिनों के लिए किसी छायादार स्थान में रखकर उसे जूट के बोरे से ढ़क दें। ध्यान रखें कि उसमें पर्याप्त नमी बनी रहें। बुवाई की अन्तिम बखरनी के समय उपरोक्त मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से बुरकाव करें।

खड़ी फसल में छिड़काव : खड़ी फसल में फफूंद जनित रोगों के लक्षण प्रकट होने पर इनके प्रबन्धन केलिए 6–8 ग्राम ट्राईकोडर्मा को प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

प्रयोग में सावधानियां : यह क्षारीय भूमि में कम असरकारक है। इसके प्रयोग के समय मृदा में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। इसके उत्पादों को विश्वसनीय स्रोतों से ही खरीदें। इसके उत्पाद पर्याप्त करने से पूर्व सुनिश्चित कर लें कि इसे धूप एवं अधिक तापमान में तो भण्डारित नहीं किया गया। इसे खरीदने के पश्चात् तुरन्त इस्तेमाल करें। परन्तु यदि भण्डारण की आवश्यकता हो तो इसे नम व छायादार स्थान पर ही थोड़े समय के लिए भण्डारित करें। वांछित परिणाम पर्याप्त करने के लिए उचित सांद्रण का प्रयोग करें। प्रयोग पूर्व पैकेट में अंकित सभी जानकारियां भली भांति पढ़ लें।

इन फसलों में होता है ट्राईकोडर्मा का प्रयोग : ट्राईकोडर्मा का उपयोग सभी प्रकार की फसलों व सब्जियां जैसे कपास, तम्बाकू, सोयाबीन, गन्ना, शकरकंद, बैंगन, चना, अरहर, मूंगफली, मटर, टमाटर, मिर्च, गोभी, आलू, प्याज, लहसुन, अदरक और हल्दी आदि पर किया जाता है।

ट्राईकोडर्मा के प्रयोग की सीमाएं : इसके उपयोग के बाद 4–5 दिन तक रासायनिक कवकनाशी का उपयोग न करें। सूखी मृदा में ट्राईकोडर्मा का प्रयोग न करें। क्योंकि इसकी बढ़वार व जीवित रहने के लिए नमी बहुत आवश्यक है। ट्राईकोडर्मा उपचारित बीज को धूप में न रखें। इससे उपचारित गोबर की खाद को ज्यादा समय तक न रखें।

ट्राईकोडर्मा के प्रयोग में ध्यान देने योग्य बिन्दु :

- कल्चर में पर्याप्त मात्रा में सी.एफ.यू. (कॉलोनी फार्मिंग यूनिट) होनी चाहिए।
- सही समय पर ट्राईकोडर्मा का उपयोग करें, जिससे हानिकारक फफूंद को यह समय से रोक सकें।
- कल्चर का फसल पर सही असर कल्चर उत्पादन तिथि से छह महीने के अन्दर उपयोग करने पर होता है।
- आधुनिक कृषि पद्धति में किसान फसलों में मृदा जनित व बीज जनित रोगों की रोकथाम के लिए केवल रासायनिक फफूंदनाशक दवाओं पर ही निर्भर है।
- विभिन्न प्रकार की समस्यायें जैसे प्रदूषण इससे लगातार एक ही फफूंदनाशक दवा के उपयोग से रोगनाशकों में उसके प्रति प्रतिरोधक क्षमता और उत्पादन लागत में वृद्धि आदि उत्पन्न होती है।
- फसलों में होने वाले रोगों की रोकथाम के लिए रासायनिक फफूंदनाशकों के साथ–साथ जैव फफूंदनाशकों का भी उपयोग करें जो न केवल हमारे स्वास्थ्य व पर्यावरण के लिए सुरक्षित है बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण से भी लाभदायक है।

ट्राईकोडर्मा के प्रयोग से लाभ

- यह पौधों में विषाक्त अवशेष नहीं छोड़ता है। इसलिए मनुष्य के लिए सुरक्षित है।
- फफूंदीनाशक रसायनों की तुलना में इस पर कम खर्च आता है।
- यह पौधे की बढ़वार में सहायक है, जिससे उत्पादन में भी वृद्धि होती है।
- एक बार प्रयोग करने पर काफी लम्बे समय तक इसका प्रभाव रहता है।
- यह कई फफूंदजनित रोगजनकों के खिलाफ कार्य करता है।

मृदा पर एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन तकनीक का प्रभाव

सियाराम मीणा 1, लोकेश कुमार 2 और दुर्गाशंकर मीना 3

1शोधार्थी, भा. . अ. प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

2शोधार्थी, कृषि विश्वविद्यालय जोधपुर, राजस्थान

3तकनीकी सहायक, कृषि अनुसंधान केंद्र, मंडोर, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

परिचय : फसल की उपज बढ़ाने के लिए अकार्बनिक उर्वरक का उपयोग किया जा सकता हैं; लेकिन, आने वाली पीढ़ियों के लिए पर्यावरण की रक्षा करना महत्वपूर्ण हैं, विशेष रूप से जब जनसंख्या लगातार बढ़ रही हों । दीर्घकालिक फसल उत्पादकता प्राप्त करने के लिए जैविक और अकार्बनिक दोनों उर्वरकों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाना महत्वपूर्ण हैं। मृदा की उत्पादकता और फसल की उपज को बनाए रखने और सुधारने के लिए अकार्बनिक उर्वरकों के कुछ हिस्सों को जैविक उर्वरकों से बदला जा सकता हैं। जैविक और अकार्बनिक उर्वरकों के एकल अनुप्रयोग की तुलना में, व्यापक साहित्यों के विश्लेषण में पाया गया कि एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन फसल की उपज, पोषक तत्वों की तेजता और आर्थिक लाभ में सुधार करता हैं। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एक ऐसा तरीका हैं, जो पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करने के लिए अच्छे विकल्प और लागत प्रभावी तरीके प्रदान कर सकता हैं, साथ ही साथ कुल खेती की लागत को कम कर सकता हैं। यह मृदा की भौतिक और रासायनिक परिस्थितियों को बेहतर बनाता हैं, तथा पर्यावरणीय स्थिरता का निर्माण करता हैं। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन मृदा की बहुत सी बाधाओं को दूर कर सकता हैं एवं मृदा मैं पोषक तत्व संतुलन बनाए रखता हैं ।

भारत मे मिट्टी की उर्वरता : सिंह (2001) के अनुसार देश के विभिन भागों मे, अपर्याप्त और असमान उर्वरक आवेदन के परिणामस्वरूप मृदा मे पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सल्फर, जिंक और बोरॉन) की व्यापक कमी और मृदा के स्वास्थ्य में गिरावट आयी हैं। अनुमानों के मुताबिक 63, 42, 13 और 40 प्रतिशत भारतीय मृदा में क्रमशः नाइट्रोजन, फोसफोरस, पोटेशियम, और सल्फर की कमी हैं। औसतन भारतीय मृदाओं में 49 प्रतिशत जस्ता, 15 प्रतिशत आयरन, 3 प्रतिशत कॉपर, 5 प्रतिशत मैंगनीज, 33 प्रतिशत बोरॉन और 13 प्रतिशत मोलिब्डेनम की कमी हैं ।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का उद्देश्य :

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का मुख्य लक्ष्य फसल की उपज को लंबे समय तक बनाए रखना तथा साथ ही साथ मृदा की उर्वरता बढाना और प्रदूषण को न्यूनतम करना हैं। किसानो में पर्यावरण के अनुकूल तकनीक जैसे स्वस्थ उत्पादन के लिए जैविक खेती प्रणाली, संतोषजनक आर्थिक लाभ सुनिश्चित करते हुए दूषित मुक्त भोजन आदि के बारे में जागरूकता बढ़ाना हैं ।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के मुख्य मूल्य

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के मूल सिद्धांत निम्नलिखित हैं, जिन्हें एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन रणनीतियाँ विकसित करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए :

- एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन तकनीकों को स्थानीय कृषि प्रणाली के अनुरूप होना चाहिए, जिसमें क्षेत्र की जैविक स्थितियां (खरपतवार, कीड़े और रोग), मृदा के प्रकार, सिंचाई सेवाएं, उपलब्ध उपकरण और जलवायु परिस्थितियां शामिल हैं।
- पोषक तत्वों के दोनों स्रोतों (कार्बनिक तथा अकार्बनिक) का उपयोग करना, इस से उर्वरक इनपुट में सुधार होता हैं, फसल उपयोग दक्षता में वृद्धि होती हैं, फसल की पोषण संबंधी जरूरतों को कम करता हैं, और कुल खेती की लागत को कम करता हैं।
- स्थायी और अस्थायी रूप से मृदा के पोषक तत्वों की आपूर्ति फसल की मांग के साथ होनी चाहिए ।
- एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन तकनीक उर्वरक अपशिष्टता को कम करती है, फसल की क्षमता में सुधार करती है और लाभप्रदता को बढ़ाती है।
- यह समय के साथ–साथ मृदा के भौतिक तथा रासायनिक गुणों में सुधार करने वाला होना चाहिए ।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का मृदा पर प्रभाव

मृदा भौतिक गुण : मृदा के स्वास्थ्य का आकलन करने के लिए मृदा के अन्य भौतिक गुणों के साथ बल घनत्व को महत्वपूर्ण घोतक माना गया हैं। जैविक संसाधनों को जोड़ने से मृदा के कणों के समूहन पर अच्छा प्रभाव पड़ता हैं, जो मृदा से संबंधित एक भौतिक विशेषता हैं। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम (अकार्बनिक उर्वरक) के साथ कार्बनिक खाद के उपयोग से मृदा के कणों के आपस मे समूहन, मृदा के पानी सोखने की क्षमता और उपलब्ध जल क्षमता बढ़ती हैं, साथ ही 0–30 सेमी मृदा की गहराई तक आभासी घनत्व कम होता हैं। संतुलित उर्वरक और जैविक खाद को मृदा में मिलाने से मृदा की भौतिक स्थिति में सुधार होता हैं और फसल उत्पादन में वृद्धि होती है। चावल–गेहूं फसल प्रणाली मे, एनपीके उर्वरकों तथा कार्बनिक खाद या हरी बीन के अवशेष + अनाज के अवशेषों से मृदा के एकत्रीकरण और संरचनात्मक स्थिरता में सुधार होता हैं, और इसके परिणामस्वरूप मैक्रोएग्रीगेट्स में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती हैं ।

मृदा रासायनिक गुण : उर्वरकों के संयोजन में जैविक खाद का उपयोग करने से मृदा मे ऑर्गेनिक कार्बन, नाइट्रोजन और फॉस्पोरस की मात्रा अकेले उर्वरक उपचार की तुलना में अधिक कुशलता से बढ़ती हैं। जैविक खाद के प्रयोग से, मृदा में फोसफोरस और पोटेशियम के प्रारंभिक स्तर को बनाए रखा जा सकता हैं ।

मृदा जैविक गुण : सामान्य तौर पर, मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा एंजाइम गतिविधि को प्रभावित करती हैं। उर्वरकों और खादों को संतुलित मात्रा में मिलाने से मृदा के कार्बनिक पदार्थ और माइक्रोबीअल बायोमास कार्बन की मात्रा में वृद्धि होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप एंजाइम गतिविधि में वृद्धि होती हैं। मृदा मे उपस्थित सूक्ष्म जीव पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने मे सक्रिय रूप से काम करते हैं, और मृदा में कार्बनिक पदार्थों के लिए परिवर्तन मैट्रिक्स के रूप में कार्य करते हैं। उर्वरक, या तो अकेले या जैविक खाद और हरी खाद के साथ उपयोग करने से यूरेस एन्ज़ाइम में वृद्धि होती हैं ।

निष्कर्ष : अविकसित देशों में कम कृषि उत्पादन का प्राथमिक महत्वपूर्ण कारण मृदा की उर्वरता में कमी हैं। मृदा की उर्वरता बनाए रखने के लिए अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग महत्वपूर्ण हैं। अकार्बनिक उर्वरकों का उपयोग करने में सबसे बड़ा मुद्दा इनकी की उच्च लागत हैं। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एक आवश्यक तकनीक हैं, जो बेहतर विकल्प और लागत प्रभावी तरीका प्रदान करता है जो पौधों को पर्याप्त मात्रा में स्थूल और सूक्ष्म पोषक तत्व प्रदान कर सकता है, साथ ही सिंथेटिक उर्वरकों के उपयोग को कम कर सकता हैं। जैविक खाद मृदा के कार्बनिक पदार्थ को संरक्षित करने और वर्तमान फसल को संतुलित पोषक तत्व देने में मदद कर सकती हैं, जबकि भविष्य की फसलों के लिए बड़ी मात्रा में अवशिष्ट पोषक तत्व छोड़ती हैं। यह मृदा की भौतिक और रासायनिक स्थिति और एक अच्छा वातावरण बनाता हैं तथा लंबी अवधि तक मृदा के पोषक तत्व संतुलन की रक्षा करता हैं।

जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में समेकित कृषि प्रणाली

रामजी लाल मीना, रवि कुमार मीना एवं भगवान सिंह धाकड़
सहायक आचार्य, कृषि महाविद्यालय, झिलाई

नयी उन्नत कृषि तकनीकों की सार्थकता तभी है जब कृषकसमुदाय उन्हेअपनायें, अन्यथा वे तकनीकी रूप से सबल होते हुए भी सीमित मूल्यों की रह जाती हैं। परम्परागत अनुसंधान तथा प्रसार के प्रयासों से विकसित एवं हस्तांतरित नई कृषि तकनीके बड़े पैमाने पर भिन्नता रखने वाले कृषि जलवायु तथा सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के अन्तर्गत खेती करने वाले कृषकों में एक समान रूप से अपनायी नहीं जाती हैं। यदि मूलभूत तौर पर कृषि जलवायु तथा सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों पर जिसमें कृषक खेती करते हैं, की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाए, तो अनुसंधान केन्द्रों पर विकसित एवं हस्तांतरित तकनीकों को किसानों की आवयश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप उपयुक्त नहीं पाया जा सकता। सीमित संसाधनों एवं कम अनुकूल प्राकृतिक

वातावरण में खेती करने वाले छोटे किसान प्रायः कई कारणों से नई तकनीकों को नहीं अपनाते हैं। जिनमें से कुछ मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

1. नई तकनीकों के विषय में जागरूकता का अभाव (निरक्षरता/उपेक्षा)
2. अप्रभावी प्रसार सेवाएं
3. नई तकनीकें किस परिस्थिति में विकसित की गई है उसे प्रस्तुत न करना
4. आवश्यक कृषि सामग्रियों पर खर्च करने के लिए संसाधनों का आभाव
5. समय पर खाद, बीज इत्यादि का उपलब्ध नही हो पाना।

एक और कारण यह भी कभी–कभी सुनने को मिलता है कि अनुशंसित तकनीके किसानों एवं उनके वातावरण के लिए ही उपयुक्त नहीं है सामान्यतः किसान ऐसी तकनीके ढूंढते हैं जिससे उनकी आमदनी में बढ़ोतरी हो और साथ ही साथ जिनके जोखिम का दायरा उनकी परिस्थितियों एवं प्रबंधन के अंर्तगत सीमित हो। 'हरितक्रांति' मुख्यतः समृद्ध किसानों तथा संसाधन सम्पन्न क्षेत्रों, जिनमें अधिक कृषि उत्पादन की स्पष्टतया अधिक क्षमतार्थी, तक ही सीमित रह गई। परम्परागत तकनीक–विकास तथा हस्तांतरण मॉडल जो विकासशील देशों में अपनाये गए है उन्हें अधिकांश किसानों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ पाया गया है। उत्पाद आधारित पारम्परिक कृषि अनुसंधान में कृषि प्रणाली दृष्टिकोण का अभाव हैं। अनुसंधान केन्द्रों में चलाए जाने वाले कार्यक्रम ऐसी परिस्थिति में चलाये जाते हैं जो किसान के खेतों में नहीं पाये जाते तथा इनमें किसानों की भागीदारी भी बहुत कम अथवा बिल्कुल नहीं के बराबर होती है। जटिल, विविधतापूर्ण तथा जोखिम भरी परिस्थितियों में खेती करने वाले छोटे संसाधनहीन किसानों की समस्याओं को हल करने के लिए परम्परागत, उत्पाद आधाारित अनुसंधान एवं प्रसारनीतियों की असफलता के फलस्वरूप एक अधिकवृहत, सुनियोजित, कृषक केन्द्रित तथा अन्तरआयामी दृष्टिकोण का अर्विभाव हुआ जिसे कृषि अनुसंधान प्रणाली के नाम से जाना गया। इसका उद्देश्य कृषि प्रणलियों की स्पष्ट जानकारी के आधार पर उनके लिए उपयुक्त कृषि तकनीकों का विकास तथा प्रसार करना है।

किसी भी कृषि प्रणाली के दृष्टिकोण से शोध एवं प्रसार कार्य के प्रयास के विभिन्न उद्देश्य होते हैं । इसकी सीमा फार्मिंग सिस्टम (कृषि प्रणाली) के बारे में अधिक ज्ञान अर्जित करने से लेकर कृषि प्रणाली की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं को हल करने तक है। यह समस्याओं का समाधान करने वाली भूमिका का सर्वोत्तम स्थान है क्योंकि इसका लक्ष्य किसानों के लिए उपयुक्त कृषि तकनीकों के विकास और हस्तांतरण द्वारा कृषि प्रणाली की उत्पादकता को बढ़ाया जाना है। साइमडंस (1984) ने विभिन्न देशों एवं महाद्वीपों में अपनायी गई कृषि प्रणाली अनुसंधान की विविध रणनीतियों पर विस्तृत अध्ययन कर उन्हें निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा :

(i) **कृषि अनुसंधान प्रणाली :** सीधे शब्दों में इसके अर्न्तगत यह उस कृषि प्रणाली का अध्ययन करता है जो आज भी अस्तित्व में हैं। यह पूर्णतः शैक्षणिक गतिविधि है जिसके अन्तर्गत कृषि प्रणाली का विवरण, विश्लेषण एवं इसकी कार्य प्रणाली का गहराई से अध्ययन कियाजाता है।

(ii) **नवीन कृषि प्रणाली का विकास :** प्रायः इस प्रकार के अनुसंधान, अनुसंधान केन्द्रों में चलाये जाते है तथा इसमें फसल, पशुधन एवं वृक्षों की प्रजातियों को एक क्षेत्र में समेकित किया जाता है। विभिन्न उद्यमों के बीच आपसी निर्भरता बनायी जाती है। इसमें नई कृषि पणाली का विकास कर जटिल तथा मौलिक परिवर्तनों की आशा की जाती है, न कि चरणबद्ध परिवर्तनों की।

(iii) **कृषि प्रणाली स्वरूप के साथ प्रक्षेत्र अनुसंधान :** यह एक समस्या आधारित अनुसंधान है जिसमें प्रयोगकर्ता की परिस्थितियों के आधार पर कृषि प्रणाली में परिवर्तनों को ढ़ालना चाहिए। देखा गया है कि एक ही विधि द्वारा केन्द्र एवं किसानों के खेत पर किये गए अनुसंधान का परिणाम कभी भी नहीं मिल पाता।दोनों में काफी अन्तर होता है।

समेकित कृषि प्रणाली के मुख्य बिन्दु :

1. यह पूरे कृषि फार्म का पूर्ण अध्ययन करती है तथा घटकों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में मदद करती है।
2. यह वस्तुतः कृषि क्षेत्र में पाई जाने वाली कठिनाइयों के हल तलाश पर आधारित कार्यक्रम होती है। यह विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाने वाली कठिनाइयों का अध्ययन कर उन पर शोध करने का अवसर देती है। फलतः इस तरह से विकसित तकनीक कृषकों में लोकप्रिय होती है।
3. यह विकसित तकनीक की स्थानीय विशेषता को दर्शाती है।
4. यह कृषि क्षेत्र में एक समान कठिनाई वाले क्षेत्रों की पहचान कर उसके निवारण के लिए शोध का अवसर प्रदान करती है।
5. यह कृषकों की पूर्ण सहभागिता पर आधारित कार्यक्रम है अतः इससे विकसित तकनीक किसानों द्वारा सहज ही अपनाई जाती है।
6. यह देशी तकनीकीज्ञानको शोध–कार्यक्रम व तकनीक उत्पादन में महत्ता देकर समायोजन का अवसर प्रदान करती है।

कृषि प्रणाली अनुसंधान एवं समेकित कृषि अनुसंधान में अन्तर

क्र. सं.	कृषि प्रणाली अनुसंधान	समेकित कृषि प्रणाली
1.	यहाँ अनुसंधान एक विशेष घटक पर किया जाता है साथ ही एक ही प्रणाली में किया जाता है। उदाहरणार्थः फसल प्रणाली में केवल फसलों पर ही अनुसंधान किया जाता है, उसमें कृषि के अन्य घटकों जैसे–मछली, पशुपालन आदि का अध्ययन न के बराबर होता है।	यहाँ समेकित कृषि प्रणाली पर अनुसंधान किया जाता है। समेकित कृषि प्रणाली का मतलब है कि यहाँ फसल, मात्स्यिकी, मृदा, पशुपालन, वर्मी–कम्पोस्ट, मुर्गीपालन आदि विषयों पर एक साथ अनुसंधान एवं अध्ययन करना।

2.	इस अध्ययन के द्वारा जो तकनीके विकसित होती है वो किसानों के लिए उचित है या नहीं, किसान उसे करने में सक्षम है या नहीं दिया जाता है। इस अनुसंधान में विषय–वस्तु पर ज्यादा जोर दिया जाता है। विकसित तकनीकों की काफी महंगी होने की संभावना होती है।	यहाँ पर समेकित कृषि प्रणाली स्थान विशेष के वातावरण, किसानों की समस्याओं एवं अन्य बातों को ध्यान में रखते हुए विकसित किया जाता है। जिसमें किसानों का भी परोक्ष रूप से योगदान होता है, अतः विकसित तकनीककिसानों के द्वारा यथा शीघ्र बड़े पैमाने पर अपनायी जाती है।
3.	इस अध्ययन में एक श्रृंखला (बड़े–छोटों) की होती है। प्रचार–पसार की कड़ी भी कई श्रृंखलाओं से गुजरती है जिससे कि तकनीक के प्रचार–प्रसार एवं उनके अपनाने की गति मंद होती है।	चूंकि यह किसानों के द्वारा (परोक्ष रूप में) एवं किसानों के लिए विकसित की जाती है अतः इसका प्रचार–प्रसार एवं तकनीक को अपनाने की गति काफी तेज होती है।
4.	किसान विकसित तकनीक के बारे में संशय में रहते हैं। तकनीकी चूक होने पर घाटे की पूरी संभावना होती है।	इस तरह से विकसित तकनीक किसानों के मित्र की तरह होती हैं एवं कृषक उसकी सफलता से परिचित होते हैं।
5.	इसमें भौगोलिक स्थिति, भू–संरचना, सामाजिक–आर्थिक स्थिति एवं अन्य उत्पादन के बिन्दुओं पर ज्यादा ध्यान नहीं	इसमें भौगोलिक स्थिति, वातावरण, मौसम, पानी, मृदा, सामाजिक एवं आर्थिक पहलू, आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

समेकित कृषि प्रणाली के प्रकार

समेकित कृषि में मूलत : किसी एक घटक पर आधारित करके दूसरे घटको को समन्वित किया जाता है। देश में मुख्यतः तीन घटक आधारित कई खेती प्रणालियाँ अपनायी जा सकती है :–

अ) मत्स्य आधारित समन्वित कृषि प्रणाली :

- बागवानी– सह –मात्स्यिकी
- धान्य फसल– सह –मात्स्यिकी
- रेशम पालन– सह –मात्स्यिकी
- बत्तख पालन– सह –मात्स्यिकी
- कुक्कुट पालन– सह –मात्स्यिकी
- दुधारु पशुपालन– सह –मात्स्यिकी
- सूअर पालन– सह –मात्स्यिकी
- बकरी पालन– सह –मात्स्यिकी
- खरगोश पालन– सह –मात्स्यिकी

ब) फसल आधारित समन्वित कृषि प्रणाली

- धान– सह –मात्स्यिकी
- फसल–सह–मात्स्यिकी / बत्तख पालन कृषि प्रणाली
- फसल–सह–बागवानी कृषि प्रणाली
- फसल–सह–बागवानी– सह –वानिकी कृषि प्रणाली
- फसल–सह–बागवानी–सह–चारागाह सह वानिकी कृषि प्रणाली

स) पशुधन आधारित समन्वित कृषि प्रणाली

- फसल–सह–बकरी पालन
- फसल–सह– दुधारु पशुपालन
- फसल–सह– दुधारु पशुपालन सह मात्स्यिकी
- वनिकी–सह–पशुपालन
- कृषि फसल– सह –बकरी पालन
- कृषि फसल– सह –बागवानी–सह –सुअर पालन इत्यादि

दो एकड़ क्षेत्र के लिए आदर्श समकित कृषि प्रणाली मॉडल

अवयव	स्थापना लागत (रु.)	वार्षिक लागत (रु.)	शुद्ध आमदनी (रु.)
खाद्य फसलें (0.4 है.)	–	31,200	27,683
बागवानी (0.15 है.)	2,500	27,370	23,200
चारा फसलें (0.1 है.)	–	13,120	17,333
मत्स्य पालन (0.1 है.)	70,000	11,750	25,460
बतख पालन	18,000	16,230	5,266
गोपालन (2+2) (0.16 है.)	1,00,000	62,250	32,260
केंचुआ खाद	15,200	7,200	9,300
कुल	**2,05,000**	**1,69,120**	**1,40,501 लाभ : लागत : 1.85**

एक एकड़ क्षेत्र के लिए आदर्श समेकित कृषि प्रणाली मॉडल

अवयव	स्थापना लागत (रु.)	वार्षिक लागत (रु.)	शुद्ध आमदनी (रु.)
खाद्य फसलें (0.5 है.)	–	14,100	15,250
बागवानी (0.09 है.)	5,000	9,946	14,200
चारा फसलें (0.1 है.)	–	7,175	5,250
बकरी पालन (0.018 है.)	65,220	16,614	21,235
खुंभी उत्पादन (0.003 है.)	9,000	7,000	4,110
कुक्कट पालन (700 चूजें) (0.0015 है.)	15,000	60,800	22,150
केंचुआ खाद फसल अवशेष	8,000	3,287 900	5,163
कुल	**1,02,220**	**1,19,822**	**87,358 लाभ : लागत : 1.72**

समेकित कृषि प्रणाली के प्राथमिक उद्देश्य :

- कृषि फार्म की उत्पादकता में वृद्धि को बाधित करने वाले कारकों की पहचान करना।

- कृषकों की सहभागिता को प्राथमिकता देते हुए संसाधनों के सदुपयोग हेतु तकनीकी फेर–बदल करना।
- कृषकों की सहभागिता द्वारा समेकित कृषि प्रणाली में प्रयोग होने वाले तकनीकों में परिशोधन करना एवं कृषकों का विचार लेना।
- लिंगो के अनुपात को कृषि प्रणाली में समायोजित करते हुए कृषि प्रणाली के विभिन्न घटकों द्वारा हुए परिवर्तन या उत्पादकता पर नजर रखना।

समेकित कृषि प्रणाली शोध के उद्देश्य :

- कृषि उत्पादन से सम्बन्धित भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन।
- कृषकों की जरूरतों, उनकी बौद्धिक क्षमता, बाधायें एवं प्राथमिकताओं का अध्ययन।
- परम्परागत कृषि प्रणालियों का अध्ययन एवं उनमें सुधार की गुंजाइश तलाशना।
- सामान्य कृषि व्यवस्था वाले क्षेत्रों के लिए नये समेकित कृषि प्रणाली का मॉडल तैयार करना।
- कृषकों द्वारा बताये गए देशी ज्ञान पर शोध कर उनमें सुधार करना एवं उनको नये समेकित कृषि–प्रणाली में समायोजित करना।
- नये विधि विकसित समेकित कृषि मॉडलों का प्रसार करना एवं विकसित मॉडल द्वारा उत्पन्न आर्थिक व सामाजिक पहलुओं का सिलसिलेवार ढंग से अध्ययन कर उनमें पुनः सुधार के अवसरों को पहचानना।

समेकित कृषि प्रणाली में महिलाओं की भागीदारी का भी काफी महत्व है। महिलाएँ कृषि कार्य के साथ–साथ भंडारण का भी कार्य संभालती हैं। पशुओं के अलावा अन्य घटक जैसे मशरुम उत्पादन, वर्मी कम्पोस्ट बनाना, मधुमक्खी पालन इत्यादि कई ऐसे कार्य हैं जिनमें महिलाओं का सक्रिय योगदान होता है। साथ ही साथ यदि पुरुष एवं महिलाएँ मिलकर समेकित कृषि प्रणाली में अपना योगदान दे तो लागत में काफी कमी आजायेगी तथा अधिक लाभ की संभावना होगी। विभिन्न घटकों के समायोजन के कारण जलवायु में आने वाले परिवर्तनों का प्रभाव भी समेकित कृषि प्रणाली में कमतर पाया गया है। अतः आज के परिदृश्य में समेकित कृषि प्रणाली सर्वथा उपयोगी एवं लाभदायी है।

डॉ. सुदेश कुमार
प्रसार शिक्षा निदेशक

निदेशक की कलम से

जून माह में कृषि कार्य

प्रिय किसान भाईयों,

1. खरीफ फसलों में काले कीट के पतंगों को नष्ट करने के लिए प्रकाश पाश का उपयोग करें। इसके लिए वर्षा प्रारम्भ होते ही खेतों की मेड़ों पर गैस की लालटेन या बल्ब जलायें और इनके नीचे 5 प्रतिशत मिट्टी का तेल पानी में मिलाकर किसी बड़े बर्तन में रख दें। प्रकाश पर कातरा के पतंगे आकर्षित होंगे तथा नीचे मिट्टी के तेल मिले पानी में गिरकर मर जायेंगे।
2. सिंचित मूंगफली की बुवाई का उपयुक्त समय जून माह के प्रथम सप्ताह से दूसरे सप्ताह तक है। मिट्टी जांच के आधार पर अंतिम जुताई से पूर्व प्रति हैक्टेयर 250–300 किलो जिप्सम मिलायें। मूंगफली के खेत में प्रति हैक्टेयर 60 किलो फॉस्फोरस और 20 किलो नत्रजन बुवाई के पहले नायले से ऊर कर देवें। फॉस्फेट तत्व की पूर्ति सिंगल सुपर फॉस्फोरस (एसएसपी) द्वारा किया जाना अधिक उचित है।
4. मूंगफली की आर.जी.–382, आर.एस.–1, एम.–13, आर.जी.–425 (राज दुर्गा), आर.जी.–510, आर.जी.–578, आर.जी.–559–3 प्रमुख फैलने वाली एवं गिरनार–2 (अर्द्ध विस्तारी) किस्में बुवाई के लिए उपयुक्त हैं तथा सफेदलट से बचाने के लिए मूंगफली के बीज को बुवाई से पहले क्लोथियानिडिन 50 डब्ल्यू.डी.जी. 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें या इमिडाक्लोप्रिड 200 एफ.एस. 300 मि.ली. प्रति हैक्टेयर मिलाकर बुवाई करें।
3. मूंगफली की गलकट रोग से बचाने हेतु 3 ग्राम थायरम या कार्बोक्सिन 37.5 प्रतिशत + थायरम 37.5 प्रतिशत 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें। बुवाई पूर्व ट्राईकोडर्मा 2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से 500 किग्रा गोबर की खाद में मिलाकर खेत में डालें।
5. खरीफ प्याज की बीज द्वारा पौध तैयार करने का उचित समय है। एन.–53 एग्रीफाउण्ड डार्क रेड खरीफ प्याज की उन्नत किस्में हैं।
6. नींबू वर्गीय फलदार पौधों में फल गिरने की समस्या की रोकथाम हेतु प्लेनोफिक्स हारमोन का 3 मि.ली. प्रति 15 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
7. डेयरी में अधिक लाभ केलिए बछड़ियों का वैज्ञानिक विधि से पालन पोषण करें।

प्रमुख संरक्षक	:	डॉ. बलराज सिंह
संरक्षक	:	डॉ. सुदेश कुमार
प्रधान सम्पादक	:	डॉ. सन्तोष देवी सामोता
		श्री बी. एल. आसीवाल
		डॉ. बसन्त कुमार भींचर
तकनीकी परामर्श	:	डॉ. एम.आर. चौधरी
		डॉ. आर. पी. घासोलिया
		डॉ. डी. के. जाजोरिया

बुक पोस्ट

डाक टिकट

पत्रिका सम्बन्धी आप अपने सुझाव, आलेख एवं अन्य कृषि सम्बन्धी नवीनतम जानकारियाँ हमारे मेल jobnerkrishi@sknau.ac.in पर भेजे।

प्रकाशक एवं मुद्रक : निदेशालय, प्रसार शिक्षा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के लिए अम्बा प्रिन्टर्स, जोबनेर से मुद्रित।